* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ।।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।।	सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ।।

वर्ष ६ — गौराब्द ४७७, मास—पद्मनाभ १४, वार-प्रद्युम्न, मंगलवार, ३१ भाद्रपद, सम्वत् २०२०, १७ सितम्बर १९६३ — संख्या ४

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमंगल-स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठक्कुर भक्तिविनोदकृत]

तत्रोषित्वा कतिपयदिवा दाक्षिणात्यं जगाम कूर्मक्षेत्रे गदविरहितं वासुदेवं चकार ।
रामानन्दे निजजनगणे प्रेमसिन्धुं ददौ य स्तं गौराङ्गं जगदुपकरं तीर्थमूर्तिं स्मरामि ।।४३।।

देशे देशे सुजननिचये प्रेमविस्तारणं यो रंगक्षेत्रे कतिपयदिवा भट्टपल्यामवात्सीत् ।
भट्टाचार्यान् परमकृपया कृष्णभक्तांश्चकार तं गोपालाश्रयसुखनिधिं गौरमूर्तिं स्मरामि ।।४४।।

बौद्धान् जैनान् भजनरहितान् तत्त्ववादाहतांश्च मायावादह्रदनिपतितां शुद्धभक्तिप्रचारैः ।
सर्वांश्चैतान् भजनकुशलान् यश्चकारात्मशक्त्या वन्देऽहं तं बहुमतधियां पावनं गौरचन्द्रम् ।।४५।।

दत्त्वानन्दं कलिमलहरं दाक्षिणात्येभ्य ईशो नीत्वा ग्रन्थौ भजनविषयौ कृष्णदासेन सार्द्धम् ।
आलालेनालयपथगतं नीलशैलं ययौ य स्तं गौरांगं प्रमुदितमतिं भक्तपालं स्मरामि ।।४६।।

काशीमिश्रद्विजवरगृहे शुद्धचामीकराभो वासञ्चक्रे स्वजननिकरैर्यैः स्वरूपप्रधानैः ।
नामानन्दं सकल समये सर्वजीवाय योऽदात् तं गौरांगं स्वजनसहितं फुल्लमूर्तिं स्मरामि ।। ४७।।

नीलाचेशे रथमधिगते वैष्णवे यं स्तदग्रे नृत्यन् गायन् हरिगुण-गणं प्लावयामास सर्वान् ।
प्रेम्नौढ्यान् गजपति मुखान् सेवकान् शुद्धभक्तां स्तं गौरांगं स्व सुखजलधिं भावमूर्तिं स्मरामि।४८।
ओढ्रदेशांद् ययौ गौडं सीमायानुत्कलस्ययो हित्वौढ्रपार्श्वदां देवस्तं स्मरामि शचिसुतम् ॥४९॥
श्रीवासं वासुदेवञ्च राघवं स्व स्व मन्दिरे दृष्ट्वा शन्तिपुरं यातो यस्तं गौरं स्मराम्यहम्॥५०॥
श्रीविद्यानगरं गच्छन् विद्यावाचस्पते गृंहम् कुलियायां नवद्वीपे ययौ यस्तमहं भजे ॥५१॥

पद्यानुवाद—

कछु दिन पुरी निवास कर दक्षिण यात्रा कीन ।
कूर्म क्षेत्र में 'वासु' को 'गद' हर कियौ नवीन ॥
रामानन्द सों मिले प्रभु 'विद्यानगर' मझार ।
प्रश्नोत्तर छल तत्त्वनिज दरसायौ रससार ॥४३॥
तीरथ छल देसन कियौ भक्ति प्रेम निस्तार ।
तीरथ मूरत आप प्रभु पातकि जन निस्तार ॥
रङ्ग क्षेत्रमें जाय प्रभु कीनौं 'चातुरमास' ।
भट्ट पल्लीमें जाय कैं वेङ्कटभट्ट गृहवास ॥
भट्ट अचारज सब किये कृष्ण भक्त तत्काल ।
निज परिकर लखि शिष्य किय बालक "भट्टगोपाल" ॥४४॥

बौद्ध, जैन, अरु तत्त्व हत, जे जन भजन विहीन ।
पड़े मोहके गर्तमें मायावादी दीन ॥
कापालिक, अरु पाशुपत, कीये सब उद्धार ।
सबन कृष्ण भक्ति दई आत्म शुद्धि विस्तार ॥४५॥
दियौ दक्षिणी जनन कौं कलिमलहर आनन्द ।
कञ्चन मूरत गौर प्रभु जै जै नदिया चन्द ॥
दक्षिणते ये ग्रन्थ दो लाये श्रीप्रभु सङ्ग ।
'ब्रह्म संहिता', 'कृष्ण करणामृत' सहित उमङ्ग ॥
लखि अलालनाथहि प्रभु कृष्णदास संग लीन ।
पुनि प्रयान नीलाद्रि कैं यही पथसौंकीन ॥४६॥

द्विजवर काशीमिश्रके आलय गौर निवास ।
कियौ स्वरूपप्रमुख निजजन सह अधिक हुलास ॥

श्रीहरिनाम अनन्द प्रभु वितरत आठौ जाम ।
होत परम कल्यान सब जीवन पूरन काम ॥४७॥

श्रीनीलाचल चन्द्र जब रथ आरोहन कीन ।
प्रेम विवश श्रीगौरहरि उलह्यौ प्रेम नवीन ॥
निज जन वैष्णव संप्रदा सकल लई प्रभु संग ।
नृत्य गान आगै करत बाढ़ी प्रेम तरंग ॥
सकल जगत प्लावन कियौ प्रेम भक्तिकी धार ।
ओढ़ू भक्त गजपति नृपति प्रमुख कृपा विस्तार ॥
निज जन सुख जलनिधि प्रभु सर्व भाव तनु आप ।
सुरदुर्लभ हरिभक्ति दैं हरौ जीव सन्ताप ॥४८॥

उत्कल तज प्रभु शचीसुत कीनौ गौड प्रयान ।
वासुदेव, श्रीवास, राघव भेटे निज थान ॥
कर प्रयान श्रीशान्तिपुर 'कुलिया' 'नदिया' जाय ।
विद्यावाचस्पति तारे विशानगर जाय ॥४९-५१॥

—परलोकगत पं० मधुसूदनदास गोस्वामी कृत

गौड़पुर

श्रीपाणिनी मुनिने अपने लेखनीमें गौड़पुरके सम्बन्धमें उल्लेख किया है। पाणिनी मुनिका अभ्युदयकाल आजसे हजारों वर्ष पूर्व है। कुछ विद्वानोंके मतानुसार प्राय तीन हजार वर्ष पूर्व जहाँ ब्राह्मणोंके पूर्व पुरुषगण निवास करते थे, पाणिनी मुनि भी वहींके अधिवासी थे। पाणिनी द्वारा उल्लिखित इस गौड़राजेन्द्रपुरका अनुसंधान करने पर यह पता चलता है कि कृष्णनगरसे नवद्वीप घाट जानेवाली छोटी रेलवाइन पर आमघाटा नामक स्टेशनके निकट 'सुवर्णविहार' नामक स्थानमें अतिप्राचीनकालमें गौड़देशकी राजधानी थी। जब बौद्धधर्मका विस्तार हुआ था, उस समय इस स्थानका नाम सुवर्णविहार था। मालदह जिलेके निकटवर्ती 'कर्णसुवर्ण' और ढाका जिलेके 'सुवर्णग्राम–इस त्रिकोणावस्थित भूखण्डको गौड़देश कहकर उसके तीन प्रदेशोंकी उक्त तीन राजधानियोंका मध्ययुगमें वर्णन किया गया है। सुवर्णविहारमें पालराजाओंने कुछ काल तक राज्य किया। आजकल वह नगर पृथ्वीके

नीचे दबा पड़ा है। इन पाल राजाओंने मगधमें कुछ समय तक राज्य किया था।

शूरवंशी राजाओंके राज्यकालमें गौड़देशकी राजधानी शोरडांगा थी। वर्तमान समयमें इसे शरडांगा कहा जाता है। इसी शोरडांगाका एक दूसरा नाम शवरक्षेत्र भी है। कालापाहाड़के अत्याचारके कारण श्रीजगन्नाथदेवजीकी श्रीमूर्तिका श्रीक्षेत्रसे लाकर शवरक्षेत्रमें स्थापन किया गया था। आजकाल गांगतटवासी उपाध्याय वंशके वंशधर ही भगवानके स्वप्नादेशके अनुसार जगन्नाथजीकी सेवा करते हैं। इस शोरडांगा या शवरक्षेत्र का अत्यन्त निकटवर्ती स्थान ही स्येनडांगा है। किसी किसीके मतानुसार स्येन वंश के राजा लोग स्येन (बाज) पक्षीका चिह्न धारण करते थे, इसलिये उनकी स्येन उपाधि थी। परवर्तीकालसे 'सेन्न या सेना', जो फ़ारसी शब्द है, फ़ौजके लिए प्रयुक्त किया गया है।

इस समय यह 'स्येनडांगा' ही शोणडांगाके नामसे प्रसिद्ध है। इसी गौड़देशमें सुवर्णविहार, शरडांगा, स्येनडांगा और श्रीमायापुर आदि स्थान-समूह एक साथ मिलकर किसी समयमें गौड़राजेन्द्रपुर कहलाता था। यवनोंके आक्रमणसे ये सभी स्थान जनशून्य हो गये। यह प्रायः सात सौ वर्ष पहले की बात है। यद्यपि प्राचीन गौड़पुर कालसमुद्रके अतल गर्भमें निमज्जित हो गया है, फिर भी उन उन स्थानोंके क्षात्रवृत्ति सम्पन्न लोगोंका पूर्वाधिकार लुप्त होने पर भी उनमें ब्रह्मवृत्तिका उदय हो जानेके कारण पूर्व गौरव कुछ मात्रामें संरक्षित हुआ था। भागीरथी गंगा एवं सरस्वतीने अपनी-अपनी विभिन्न कालीन धाराओंके द्वारा उन प्राचीन स्थानोंको प्रायः ध्वंस कर दिया है। फिर भी वहाँ आज भी कुछ ऐसे भग्नावशेष प्राप्त हैं जिनका प्रत्नतत्त्वकी दृष्टिसे विशेष महत्त्व है। श्रीमायापुरका कुछ अंश कुछ समय पहले 'बेलपुकुरिया' के नामसे प्रसिद्ध था। प्राचीन नवद्वीपके निकटवर्ती स्थानोंको कुछ दिन पूर्व 'रामजीवनपुर', 'कोरियाटि', 'तारणवास', 'वामनपुकुर', आदि नामोंसे पुकारा जाता था। नदीयाके राजवंशके पूर्व-इतिहासका अवलोकन करनेसे इन बातोंके कई प्रमाण मिलते हैं।

वीर पुरुषोंका पराक्रम नित्यकाल तक स्थायी नहीं होता, परन्तु ब्रह्मवृत्ति-सम्पन्न विद्वानोंकी स्मृति अनेक काल तक शब्दोंके रूपमें जाज्वल्यमान रहकर अपने अस्तित्वकी रक्षा करते हैं। ये प्राचीन स्थान-समूह किसी समय विद्वान नागरिकोंसे सुशोभित थे। 'श्रीगीतगोविन्द'के रचयिता श्रीजयदेव कवि इसी श्रीमायापुरमें स्येनवंशी राजाओंकी राजसभा में एक उज्ज्वल रत्नकी तरह विराजमान थे। परवर्तीकालमें हैतुक-न्यायकी शिक्षा मिथिलासे गङ्गाके तटपर स्थित श्रीमायापुर-नवद्वीपमें ही प्रधानान्तरित हुई थी। यहीं पर अन्यान्य ७: गोष्ठवासिका पुरियोंके छात्र कुछ शताब्दियों तक नव्य-न्यायकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आया करते थे। किन्तु आज पूर्व-गौरवकी बात प्रायः विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो चुकी है। जनसाधारण आजकल इस विषयसे नितान्त अनभिज्ञ हैं।

भाइयो! आज उसी विद्वद्स्मृतिको पुनः जगानेके लिए गौड़-नरेन्द्रपुरमें फिरसे विद्यापीठका

उद्‌बोधन कार्य प्रारम्भ हुआ है। यहाँ पर पुनः अपनी परम आदरणीय वाणीके विविध विलासवाले सुन्दर रंगमंचकी पुनः प्रतिष्ठा करें। इस विषयमें पंचगौड़के सम्पूर्ण अधिवासियोंके दो मत नहीं हो सकते हैं। मगधदेशीय जैनोंने संस्कृत साहित्यकी उन्नतिके लिए कितना यत्न किया है! कीकटदेशीय बौद्ध नालन्दा विद्यालयादिकी स्थापना करके आज भी विद्वत्-समाजकी सुप्त विद्वत्तवृत्तिका उद्‌बोधन कर रहे हैं।

हे गौड़ीय भ्रातृवृन्द! क्या आप लोगोंके हृदयमें उस विद्याविलासकी स्मृति एकबार भी नहीं जागती? श्रीचैतन्यदेवके प्रकटकालकी एवं उनके पूर्ववर्ती काण-भट्ट आदिकी न्याय-शास्त्रमें दक्षता क्या आप लोगोंको कभी भी स्मरण नहीं आता? बहुत दिनोंसे ब्रह्म-वृत्तिमें प्रतिष्ठित न होकर क्या इतरचेष्टाओंमें ही सभी शक्तियोंको नियुक्त करेंगे? देखो, भगवानकी इच्छासे सप्त मोक्षदायिका पुरियोंमें अन्यतम श्रीमायापुरी कालप्रभावसे लुप्त प्रायः हो गयी थी। इसलिए कोई उसका खोज नहीं पा रहे थे। परन्तु यथार्थ स्वदेश-वत्सल श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके प्रियजनों-ने स्वदेशवासियोंकी परम कल्याणकारी कामनासे जिस हितैषी कथाका प्रचार करनेके लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित पारमार्थिक धर्मका प्रचार करनेके लिए अथवा अनुष्ठान करने-करानेका प्रयास किया है, आज उसी धर्म-अंकुरसे वृक्ष उत्पन्न हुआ है। कुछ समय के बाद इसी वृक्षके पुण्य-फलादिके द्वारा गौड़ीयोंकी निवृत्त क्षुधा पुनः संजीवित हो सकेगी।

हे गौड़ीय भ्रातृवृन्द! आप लोगोंसे हमारा नम्र निवेदन है कि आप हमारी जिस रूपमें सहायता कर सकें, वैसी सहायता करके पूर्व-गौरवकी स्थापना करनेके लिए विद्यापीठका उद्धार करें। इस विषयमें आप लोगोंकी सहानुभूति ही हमारा एकमात्र सहारा है। इस कार्यसे आप लोगोंके यशः सौरभ और प्रतिष्ठाकी वृद्धि होगी एवं आप भी इससे पुरस्कृत होंगे। निष्काम भगवद्भक्त शास्त्रज्ञगण! आप लोग प्रतिष्ठाके भिक्षुक नहीं हैं। अतः आपसे यही प्रार्थना है कि परतत्त्वकी विद्याकी वेदी जिससे दिन प्रतिदिन उन्नतिकी ओर अग्रसर हो सकें, इसके लिए प्रयास करें। आप लोगोंको कभी भी विष्ठा तुल्य प्रतिष्ठाकी दुर्गन्ध बाधा नहीं दे सकती।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

चेतावनी

बौरे मन, समुझि समुझि कछु चेत।
इतनौ जन्म अकारथ खोयौ, स्याम चिकुर भए सेत॥
तब लगि सेवा करि निस्सय सों, जब लगि हरियर खेत।
सूरजदास भरम जनि भूलौ, करि बिधना सौं हेत॥

सिद्धान्त-रत्न या वेदान्त पीठक

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ९, संख्या ३, पृष्ठ ५९ से आगे]

छठवें पाठमें अद्वैतवादियोंके सभी वितर्कोंका खण्डन किया गया है। वेदोंके अनुसार ज्ञातृ, ज्ञेय, ज्ञान आदि विशेषोंके द्वारा अद्वितीय ब्रह्ममें भेदकी प्रतीति होती है। वह प्रतीति पारमार्थिक है, मिथ्या नहीं। अभेद पारमार्थिक नहीं है। ब्रह्मभाव फल नहीं है, बल्कि ब्रह्मसुखानुभव ही फल है। शास्त्रोंमें ब्रह्मके अभेदत्वका निर्देश नहीं है। आत्मा मूढ़ चिन्मात्रमय होने पर भी कर्तृत्व और भोक्तृत्व धर्मयुक्त सविशेष वस्तु है। आत्मामें अस्मदर्थ (मैं) और युष्मदर्थ (तुम) है, वह माया कल्पित नहीं है, बल्कि पारमार्थिक तद्विशेष है। 'सत्य', 'ज्ञान', 'अनन्त'—ये सभी ब्रह्मके गुण हैं। "द्वा सुपर्णा सयुजा" आदि श्रुति-मंत्र पारमार्थिक भेदको सूचित करती हैं। जीव और जड़जगत अध्यासित नहीं हैं, बल्कि वे ब्रह्मसे सम्बन्धित पारमार्थिक भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। परस्पर स्वरूप - भेद पारमार्थिक है। श्रुतियोंमें ब्रह्मके जिस रूपका वर्णन किया है, वह काल्पनिक नहीं, सर्वथा सत्य है। अद्वैतवादियोंका साधन-काण्ड निरर्थक है। उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वताफल, अर्थवाद और उपपत्ति इन छः लक्षणोंके द्वारा विचार करने पर सभी वेदमंत्रोंमें पारमार्थिक भेद देखा जा सकता है और 'ब्रह्म सविशेष है'—इस सिद्धान्तकी ही स्थापना होगी। ब्रह्मात्मक वृत्तिकत्व होनेके कारण यह जगत ब्रह्मात्मक है। ब्रह्म-निष्ठत्व और ब्रह्म-व्याप्यत्वके कारण भी ब्रह्मात्मकता सिद्ध होती है। सांसारिक दशामें अज्ञताके कारण "जगत ब्रह्मसे स्वतन्त्र है"—ऐसा भ्रम होता है। शास्त्रके एक देशका अवलम्बन करनेसे सिद्धान्तमें भूल हो जाता है। सर्वदेशीय सिद्धान्तमें भ्रम नहीं होता। ब्रह्म-शक्तिमय जगतको शास्त्रोंमें कहीं भी मिथ्या कहा नहीं गया है। जन्मादि अनित्य व्याप्य होनेके कारण जगतको अनित्य कहा जा सकता है। जगतका त्रिकाल-मिथ्यात्व नहीं होनेके कारण जगत सत्य है। किन्तु वह ईश्वरके अधीन है। ब्रह्मकी सृष्ट्यादि-भावशक्तियाँ हैं—यह श्रुति और स्मृतिसिद्ध है। समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्यसे युक्त भगवान् ही परब्रह्म हैं। अखिल भूत उनमें एवं अखिल भूतोंमें वे वर्तमान हैं। उनमें हेय-गुण नहीं हैं। विष्णुकी भगवत्ता वस्तुसिद्ध है। दूसरोंकी भगवत्ता केवल माहात्म्यपर है। विष्णु इच्छामय और लीलामय हैं। वे नित्यमुक्त जीवोंके भी परतत्त्व हैं। निर्गुणता उनकी एकदेशिक धर्म या आविर्भाव है। केवल ब्रह्मात्मक बुद्धिसे अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती, बल्कि केवल ब्रह्म-प्राप्तिसे ही यह सम्भव है। वेदोंमें केवल प्राकृत रूपका ही निषेध किया गया है। रूप-मात्रका निषेध नहीं है, बल्कि अचिन्त्य अप्राकृत रूप का उल्लेख है। "यतो वा इमानि भूतानि" आदि वेदवाक्योंमें जगतको सत्य कहा गया है। बौद्ध-मतानुसार जगत झूठा है। इसलिये मायावाद प्रच्छन्न बौद्धवाद ही है—इसे स्मृतियाँ स्वीकार करती हैं। बौद्धोंका क्षणिकवाद भी मायावादके दृष्टि-सृष्टि मतमें पाया जाता है। मायावाद-बौद्धोंके शून्यवादको

प्रतिच्छवि मात्र है। बौद्धोंकी भाँति मायावादी भी ब्रह्मको सदसत् अनिर्वचनीय मानते हैं। इसीलिए मायावादीको जैन - बन्धु भी कहा जा सकता है। अतः सर्ववेद-तात्पर्यसिद्ध भेदवाद ही पारमार्थिक है।

सप्तमपादमें कहते हैं कि मायावादी एक, अद्वितीय, सत्य, अनन्तशक्त्यादि विशेषशून्य एवं स्वजातीयादि भेदत्रय शून्य-ज्ञानको ही परतत्त्व मानते हैं। भाववाच्य साधित होने पर वही ज्ञान निर्भेद सम्वित् अनुभूति ज्ञप्तिवाचक तत्त्व है। कारक वाच्य करनेसे भेद-दोष होता है—यह बात नितान्त हास्यास्पद है। "ज्ञायते अनेन इति ज्ञानं"—ऐसा साधनेसे क्या शक्तिका मानना नहीं हुआ? शक्ति रहनेसे ही ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञानके विशेष समूह अवश्य ही उपस्थित होंगे। शक्तिके रहनेमें क्या भय है? शक्तिका अनन्त-ज्ञान भी अनन्त है। शक्तिके कारण ज्ञानमें भेद नहीं पड़ता। यदि कहा जाय कि अहमर्थ स्थूलदेहके अनुगत है, तो ऐसी बात नहीं है। ज्ञान गुणका आश्रयत्व ही ज्ञातृत्व ही है। ज्ञान आत्माका औत्पत्तिक धर्म है। जैसे प्रकाश रूप सूर्यके प्रकाशकत्वके द्वारा जिस प्रकार द्वैत नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानके ज्ञातृत्व द्वारा भी द्वैत या भेद नहीं होता। अतएव ज्ञानादि अनन्त शक्तियोंसे युक्त तत्त्व ही ब्रह्म है। अनुभूति किसे कहते हैं? अपनी सत्ताके द्वारा अपने आश्रयका प्रकाशक अथवा अपना विषय साधक ही अनुभूति है। निर्द्धर्मा अनुभूति सम्भव नहीं है। अनुभूति सम्भव होने पर शक्तिमान होती है। अहं बुद्धिको अनात्म-तत्त्व नहीं कहा जा सकता। अहं - बुद्धि शुद्धात्मासे सम्बन्धित है। मैं जानता हूँ—मैं सुखी हूँ—ऐसा ज्ञान "सुखमहमस्वप्सम्" आदि श्रुतिमंत्रोंके द्वारा अनुमोदित है। अहंकार शुद्ध ज्ञातृनिष्ठ धर्म है, वह अनात्म नहीं है। देहकी भाँति पृथगात्म-बुद्धि रूपी अहंता (मैं पन) महत्तत्त्वसे उत्पन्न है, अतएव प्राकृत है। इसलिए शुद्धज्ञाननिष्ठ अहंतासे पृथक् है। शुद्ध अहंभाव स्वरूपगत है। वह संसारका कारण नहीं है, बल्कि उसका निवर्त्तक है। यदि प्राकृत अहंकार ही जीवका निजस्व अहंकार होता, तो मोक्षके लिए कौन प्रयास करता? मोक्ष होनेपर जिसका नाश हो जायगा, वह मोक्षकी बात क्यों सुनेगा एवं उसके लिए क्यों यत्न करेगा? इसलिए मुमुक्षु अहङ्कार शुद्धाहङ्कार-निष्ठ है। वामदेवादियोंके वचनोंका विचार करना आवश्यक है। अनुभूतिकी सत्तामें विषय-विषयीका भेद अनुस्युत रहता है। आत्मा अनुभविता है एवं अनुभूति उसका धर्म है। वह धर्म जब विषयको प्रकाश करता है, उस समय वह स्वप्रकाश है एवं दूसरे समयमें ज्ञानगम्य है।

आठवें पादमें यह स्थिर किया है कि कर्तृत्वादि मान ज्ञान और ज्ञाता स्वरूप है, अहम्पदार्थ आत्मा-ईश्वर और जीव भेदसे दो प्रकारका है। ईश्वर विभु हैं, एवं अपनी शक्तिके द्वारा जगत कर्त्ता हैं। स्वेच्छाधीन प्रकृतिके द्वारा वे जगतके निमित्त एवं उपादान कारण हैं। प्रकृति एवं जीवसे उनके आश्रय-रूप ईश्वर नित्यकाल ही पृथक् हैं। परादि तीन शक्तियोंसे युक्त ब्रह्म सर्वदा स्वरूपानतिरिक्त जगत-जन्मादिके हेतु हैं। इसलिये जगत पारमार्थिक दृष्टिसे सत्य है एवं भगवान् श्रीकृष्णमें ही नित्य प्रतिष्ठित है। जीव अणु हैं एवं संख्यामें अनन्त हैं। वे ईश्वराधीन कर्त्ता, मन्ता, बोद्धा और ज्ञाता हैं।

जीवमें बिन्दु-बिन्दु मात्रामें सभी गुण नित्य अवस्थित हैं। चेतनकण होने पर भी जीव आनन्त्य-धर्मके उपयोगी हैं एवं अणु-चैतन्यत्वके कारण ईश्वरांश हैं। विराट् अग्निसे निसृत विस्फुलिङ्ग (चिन्गारी) की भाँति जीव ब्रह्मका ही अंश-स्वरूप है। जैसे चिन्तामणि सोनेको पैदा करके भी अविकृत रहती है, उसी तरह ब्रह्म अनन्त जीवोंको उत्पन्न करके भी अविकृत ही रहते हैं। इसलिए जीव ब्रह्मसे नित्यकाल ही पृथक् हैं। ब्रह्मकी तटस्थाशक्तिसे प्रकटित जीव शक्तिमान भगवान्‌से अभेद भी हैं। इसलिए ईश्वर और जीवमें अचिन्त्यभेदाभेद है। दूसरे मतोंमें जिस प्रकार कार्य-कारणादि भेद स्वीकृत है, उस रूपसे यहाँ स्वीकृत नहीं हैं। मायावादका तटस्थ लक्षण इसमें नहीं है। अचिन्त्य भेदाभेदकी प्रतीति नित्य भेद ही है। अहं-बुद्धिके विनाशको मायावादी पुरुषार्थ समझते हैं। उससे दुःखोंका नाश एवं सुखकी प्राप्ति नहीं होती। उससे तो केवल आत्म-विनाश ही होता है। जीव एवं ईश्वरका भेद सर्व-शास्त्र-सम्मत है। ब्रह्मांश जीव भगवत्-विमुखताके कारण मायाके बन्धनमें आबद्ध हैं। सत्सङ्गके द्वारा भगवत्-सान्मुख्य होनेपर ही विश्व-मायाकी निवृत्ति होती है। सत्सङ्गरूप भगवत् प्रसाद ही भगवत्-सान्मुख्य है। निरन्तर अनुवृत्ति (भगवत्-अनुशीलन) के द्वारा भगवान्‌के नित्य गुण-समूहको आवृत करने-वाली अविद्याका नाश होता है। तत्पश्चात् भगवान् का साक्षात्कार होता है। भगवत् कृपा ही इसका एकमात्र कारण है। शास्त्रोंके अभेदसूचक वाक्य केवल ब्रह्मायत्तक वृत्ति, ब्रह्माधीन स्थिति, ब्रह्मनिष्ठता और ब्रह्म व्याप्यताके बोधक हैं, वस्तुतः अभेद सूचक नहीं हैं। कहीं-कहीं स्थान और नतिके ऐक्यमें ऐक्य वाक्योंका प्रयोग हुआ है। सब कुछ ब्रह्मकी शक्ति विशेष है एवं शक्ति और शक्तिमानके अभेद विचारसे ही अभेद वाक्योंका प्रयोग है। उसमें कोई दोष नहीं है। उन सब तथ्योंको दृष्टिपथमें रखकर नितान्त अभेदवादकी स्थापना करनेकी चेष्टा मूर्खता मात्र है। कोई-कोई वैष्णवोंका कहना है कि परतत्त्व परमार्थ-स्वरूपमें ही सर्वाकार हैं। इसलिये शंकर सिद्धान्त और माध्वसिद्धान्त दोनोंके एकसाथ मानने से सभी श्रुतियोंका सम्मान करना हो जाता है एवं भक्तिकी हानि भी नहीं होती। परन्तु इसमें यह दोष है कि प्रपञ्च ब्रह्म होनेसे वैराग्यका कोई कारण नहीं रह जाता। मिथ्या कहनेसे वेद-विरुद्ध हो पड़ता है। जीवोंके प्रति करुणा-गुणका भी कारण नहीं होता। यहाँ पर भेदाभेदवादको दूरकर अचिन्त्य-भेदाभेद ही मानना चाहिये।

श्रीबलदेव विद्याभूषणजीने असामान्य वैदिक और वैदान्तिक पाण्डित्य एवं ब्रह्म धीषणाका परिचय देकर ग्रन्थमें पहले भगवत्तत्त्वकी स्थापना की है। तथा श्रीकृष्णकी ही भगवत्ता दिखलाकर शुद्ध भक्ति से ही सर्वार्थसिद्धि होती है—ऐसा बतलाया है। वे भगवान श्रीकृष्ण परम लौकिक-अलौकिक चमत्कार धर्मका प्रकाश करके अपने स्वधाम -सर्वोपरि स्थित गोलोकधाममें रहते हुए भी जगतमें अपनी अप्राकृत लीलाका विस्तार करते हैं। जगत सृष्टि करके उसमें अपने विभिन्नांश तत्त्व स्वरूप देवताओंको अधिकारिक दास रूपसे स्थापित कर स्वयं स्वच्छापूर्वक शुद्धसत्त्व स्वप्रकाशरूप विष्णु-स्वरूपमें परदेवता होकर जगतका पालन करते हैं। सर्ववेद-वेद्य विष्णु-पद ही सर्वोपास्य है। दूसरे सभी देवताओंका यथायथ सम्मानपूर्वक श्रीविष्णुकी उपासना करना ही जीवोंका कर्त्तव्य है। सर्वदेवतैक्यवाद, त्रिदेवैक्यवाद एवं हरिहरैक्यवादको विष्णुभक्तिमें बाधक बतलाया है। शुद्धभक्तिके विरोधी केवलाद्वैतवादी, अद्वैतवादी मायावादी, निर्गुण-ज्ञानवादी, आदि दुष्टमतोंका खण्डनपूर्वक शुद्धब्रह्मका उपास्यत्व, शुद्धजीवका उपासकत्व एवं मोक्षका स्वरूप दिखलाकर शुद्ध-भक्तिवादका प्रचार किया है।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीमद्भागवतमें सख्य भाव

[वर्ष ६, संख्या ३, पृष्ठ ७० से आगे]

देवकीनन्दन कृष्ण गोपोंको संग लेकर गैया चराते-चराते बलराम सहित वृन्दावनसे दूर निकल गये। ग्रीष्मके सूर्यके घाममें अपनी छायासे छत्रके समान बने हुए वृक्षोंको देख उन्होंने कहा—हे स्तोक-कृष्ण! हे श्रीदामा! हे सुबल! हे अर्जुन! हे विशाल! हे ऋषभ! हे तेजस्वी! हे देवप्रस्थ! हे वरूथप! इन बड़भागी वृक्षोंको तो देखो, जिनका जीवन केवल दूसरोंके हितमें ही लगा है। ये स्वयं पवन, वर्षा, शीत आदि सब कुछ सहकर हमारे कष्टों को दूर करते हैं। अहो! इनका जीवन सबसे श्रेष्ठ है, जिनसे प्राणियोंको जीविका मिलती है। जिनके पास पहुँचकर कोई भी याचक विमुख नहीं होता।

पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ।
गन्धनिर्यासभस्मास्थितोकमः कामान् वितन्वते॥
एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा ॥
(भा० १०।२२।३४-३५)

प्यारे मित्रों! ये वृक्ष अपने अपने पत्र, पुष्प, फल, छाया, मूल, वल्कल, काष्ठ, गंध, गोंद, भस्म, सार, कोंपल, आदिके द्वारा सबकी इच्छा पूर्ण करते हैं। देहधारियोंमें उन्हीं देहधारियोंका जीवन सफल है, जो प्राण, धन, बुद्धि और वाणीसे सबकी इच्छा पूर्ण करें। इस प्रकार उपदेश करते हुए यमुनाके तटपर निकल गये। वहाँ ग्वाल-बालोंनें गायोंको यमुनाका स्वच्छ और सुस्वादु जल पिलाकर स्वयं भी पान किया। फिर भूखसे व्याकुल होकर राम और कृष्णसे इस प्रकार कहने लगे—

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
एषा वां बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥
(भा० १०।२३।१)

—"नयनाभिराम बलराम! तुम बड़े पराक्रमी हो। हमारे चित्तचोर श्यामसुन्दर! तुमने बड़े-बड़े दुष्टोंका संहार किया किया है। उन्हीं दुष्टोंकी भाँति आज हमें यह भूख भी बड़ी सता रही है। अतः तुम दोनों इसे भी बुझानेका कोई उपाय करो।" अपने प्यारे सखाओंकी ऐसी व्याकुलताभरी बात सुनकर श्रीकृष्णने बहुत शीघ्र ही उनकी क्षुधानिवृत्ति-का उपाय ढूँढ़ निकाला। उन्होंने ग्वाल-बालोंको पास ही में स्वर्गकी कामनासे आंगिरस नामक यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंके निकट अन्न माँगनेके लिये भेजा। ग्वाल-बाल वहाँसे चलकर कर्म-काण्डमें निरत ब्राह्मणोंके पास पहुँचे और उनसे राम-कृष्णका संवाद कहकर अन्नकी याचना की। परन्तु कर्म-मन्थिसे जकड़े हुए ब्राह्मणोंने उनकी बातें नहीं सुनी; "हाँ" अथवा "नहीं"—कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

इति ते भगवद्याञ्चां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः
क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥
देशः कालः पृथग् द्रव्यं मंत्रतंत्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥

तं ब्रह्म परमं साक्षाद् भगवन्तमधोक्षजम् ।
मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥
(भा० १०।२३।६-११)

परीक्षित्! इस प्रकार भगवान्‌के अन्न माँगनेकी बात सुनकर भी उन ब्राह्मणोंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। क्योंकि वे क्षुद्र स्वर्गादि फल चाहते थे और उनके लिये ही बड़े-बड़े क्लेशपूर्ण कर्मोंमें उलझे हुए थे। सच पूछो तो वे ब्राह्मण अज्ञानी होकर भी वे अपनेको ज्ञानवान मानते थे; भगवद्भक्तिसे विमुख होकर भी अपनेको पण्डित मानते थे। परीक्षित्! देश, काल, पुरोडाशादिक द्रव्य, मंत्र, अनुष्ठानकी पद्धति, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—ये सभी जिनके स्वरूप हैं, उन साक्षात् परब्रह्म इन्द्रियातीत भगवान्‌को इन मूर्ख एवं अभिमानियोंने नहीं पहचाना। फिलहाल निराश होकर ग्वालबाल श्रीकृष्णके पास लौट आये।

तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः ।
व्याजहार पुनर्गोपान् दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ॥
(भा० १०।२३।१३)

ग्वालबालोंकी बात सुनकर भगवान श्रीकृष्ण हँसे। संसारमें असफलता तो बार-बार होती है। इसलिए उससे निराश नहीं होना चाहिए। बार-बार प्रयत्न करते रहनेसे सफलता मिल ही जाती है। इस लौकिक गतिको दिखलाते हुए फिरसे ग्वालबालोंसे बोले—

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ।
दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥
(भा० १०।२३।१४)

"हे ग्वालबाल! तुम लोग इस बार उनकी स्त्रियोंके पास जाओ और उनसे कहो कि राम और श्याम यहाँ आये हैं। तुम लोग जितना चाहोगे उतना भोजन वे तुम्हें दे देंगी। वे मुझसे बड़ा प्रेम रखती हैं। वे तुमको मुँहमाँगा अन्न देंगी क्योंकि उनकी बुद्धि मेरेमें लगी हुई है। वे मुझसे स्नेह रखती हैं।"

श्रीकृष्णकी आज्ञासे गोपबालक विप्रपत्नियोंके पास गये। उनसे ग्वालबालोंने श्रीकृष्ण तथा बलरामके आगमनके बारे में कहा। जैसे ही उन विप्रपत्नियोंने रामकृष्णके आगमनका वृत्तान्त सुना, वैसे ही उन्होंने शीघ्र जाकर अत्यन्त स्वादिष्ट और हितकर भक्ष्य-भोज्य-चोष्य-लेह्य—ये चारों प्रकारके भोजन-सामग्री लेकर अपने प्रियतम श्रीकृष्णके पास चल पड़ीं, ठीक वैसे ही जैसे नदियाँ समुद्र के पास जाती हैं।

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ।
अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥
(भा० १०।२३।१६)

विप्रपत्नियोंने रामकृष्णके साथ गोपोंको यथेच्छ भोजन कराया और अपनेको धन्य माना। विप्रोंने भी इस बातको सुनकर अपनी कर्म-मार्गकी रुचिको दूषित समझा।

कुछ दिन बीतने पर इन्द्रयागका प्रसङ्ग आया। गोपोंके घरोंमें उसके लिए तैयारियाँ होने लगीं।

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ।
अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥
(भा० १०।२४।१)

श्रीकृष्णचन्द्रने बलभद्रके साथ देखा कि सब ग्वाल इन्द्रके यज्ञकी तैयारी कर रहे हैं। श्रीकृष्णको यह इन्द्रपूजा अच्छी नहीं लगी। उन्होंने वृद्ध गोपोंके

सारी बातें सुनकर उन्हें समझाने लगे। श्रीकृष्णने इन्द्रके मानको भंग करनेकी इच्छासे इन्द्रकी पूजा न कर गिरिराज गोवर्धन पर्वतकी पूजाका उपक्रम किया।

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम्।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः॥
तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः॥
(भा० १०।२४।२४-२५)

"हमारे रहनेके लिए न तो कोई नगर है, न देश या गाँव ही हैं। परन्तु वन ही हमारे घर हैं। हे तात! हम तो नित्य वन और पर्वतोंमें ही रहते हैं। इसलिए गौ, ब्राह्मण, पर्वत—इनका यज्ञ प्रारम्भ करो। इन्द्रके यज्ञके लिए जो तैयारी की है, उससे गिरिराज गोवर्द्धनका पूजन करो।" इस प्रकारके मीठे शब्दोंमें कहे गये श्रीकृष्णकी बातें सबोंने मान लिया। गिरिराजका पूजन कर सभी आनन्दित हुए। दूसरी ओर इन्द्रको जब यह पता चला कि एक गोप-बालक कृष्णके कहनेसे मेरी पूजा बन्द कर गोपोंने गिरिराज गोवर्द्धनकी पूजा की है, तो उसे बड़ा क्रोध आया। उसने व्रजवासियोंको दण्ड देनेके लिए व्रज-को ही डुबा देनेका संकल्प किया। अपने मेघोंको बुलाकर वर्षा कर व्रजको डुबा देनेका आदेश दिया। मदान्ध इन्द्र यह भूल गया कि जिनके रक्षक व्रजनाथ श्रीकृष्ण हैं, उनका कोई क्या बिगाड़ सकता है।

घनघोर वर्षा शुरू हुई। बड़ी-बड़ी धाराएँ गिरने लगीं। सर्वत्र जल ही जल हो गया। ऊँचा-नीचा भाग भी दिखाई नहीं दिया।

अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः।
गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः॥
(भा० १०।२५।११)

इस प्रकारकी मूसलाधार वर्षा एवं झंझावातके झोंकोंसे सब पशु काँपने लगे, गोप-गोपियाँ भी अत्यन्त व्याकुल होकर श्रीकृष्णके चरणोंमें आये।

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो।
त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद् भक्तवत्सल॥
(भा० १०।२५।१३)

हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे प्रभो! हे भक्तवत्सल! जिसके आप नाथ हैं, ऐसे गोकुलकी और हमारी क्रोधयुक्त इन्द्रसे रक्षा करो। भगवान् ने यह सुनकर उन्हें शीघ्र ही अभय वचन दिया।

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः॥
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः॥
(भा० १०।२५।१८-१९)

"यह गोकुल, जिसका मैं ही नाथ हूँ, मैंने अपना लिया है। यह मेरी ही शरणमें है। अतः अपने योगबलसे मैं इसकी रक्षा करूँगा। शरणागतकी रक्षा करना तो मेरा व्रत है।" ऐसा कहकर भगवान्ने लीलापूर्वक एक हाथसे गोवर्धन पर्वतको उठाकर धारण कर लिया, जैसे छोटे-छोटे बालक छत्तेके पुष्पको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं। गोवर्धन पर्वतको लगातार सात दिनों तक भगवानने धारण कर रखा। उसके नीचे समस्त गोप-गोपियों, अपने परिवार एवं गायोंको रखा। इस तरह भगवान

श्रीकृष्णने इन्द्रका मद चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। ऐसे अलौकिक कार्यसे सभी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये।

ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम्।
शकटोढ़ोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः॥
(भा० १०।२५।२७)

श्रीकृष्णकी आज्ञासे सभी व्रजवासी बाहर निकले। स्त्री, बालक, वृद्ध और सभी गोपोंने छकड़ों-में सामान भरकर अपने-अपने वासस्थानकी ओर चले। भगवानने पूर्ववत् गिरिराजको अपने स्थान पर रख दिया। एकबार गोपोंकी इच्छासे उन्हें भगवानने वैकुण्ठका दर्शन कराया। (क्रमशः)

—बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्रीजी।

भगवानकी कथा

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ६, संख्या ३, पृष्ठ ६६ से आगे)

जो व्यक्ति यज्ञके लिए या कृष्ण-सम्बन्धयुक्त होकर सभी कर्म करते हैं, उनको पृथक् रूपसे यज्ञ-तपस्या या ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि अन्याभिलाषयुक्त कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार निष्काम कर्म-योगियोंमें ब्राह्मणत्व, सन्यासीत्व, योगीत्व आदि सभी गुण अनुस्युत रहते हैं, ठीक उसी प्रकार भक्तोंमें भी कर्मियोंकी यज्ञ-कुशलता या कर्म-नैपुण्य, ज्ञानियोंका त्यागस्पृहा, योगियोंकी निष्क्रियता या दैहिक इन्द्रियोंकी चेष्टा-शून्यता आदि सभी कुछ वर्तमान रहते हैं। जो कर्म, यज्ञ, तपस्या इत्यादिका निष्काम भावसे अनुष्ठान करते हैं, एवं भगवत्-प्रेमी बनकर अखिल रसके भोक्ता भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें तत्पर हैं, उनमें सबके सब गुण विद्यमान होते हैं। गीतामें कहा गया है—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥
(गीता ६।१)

निष्काम कर्मयोगियोंके कर्मफलोंका कोई आश्रय नहीं होता, क्योंकि उनके सभी कर्मफलोंके एकमात्र भोक्ता श्रीकृष्ण ही हैं। "कृष्णके लिए ऐसा कार्य करना होगा"—ऐसा सोचकर वे सभी कार्य किया करते हैं। निष्काम कर्मयोगी कृष्णकी प्रीतिके लिए जो कोई भी कार्य करते हैं, उसमें वे भोग या त्याग की आशा नहीं रखते। सन्यासीगण ब्रह्मज्ञानकी आलोचना या तत्प्रीतिके लिए शास्त्रोक्त सभी कर्मोंका त्याग करते हैं। योगीगण सब प्रकारके कर्मोंसे अवकाश लेकर परमात्माका दर्शन करनेके लिए अर्द्ध-निमिलित अवस्थामें जीवन धारण करते हैं। निरग्नि होकर या शास्त्रोक्त कर्मोंका त्यागकर सन्यासी हुआ जाता है और अक्रिय या दैहिक चेष्टाशून्य होकर योगी हुआ जाता है। परन्तु यज्ञके लिए कर्म करनेवाले व्यक्ति अपनी देहके सम्बन्धमें कोई चेष्टा ही नहीं करते। भगवत् सेवामें नियुक्त होनेके

कारण वे कोई काम्य कर्म भी नहीं करते। इसलिए अनाश्रित कर्मफलाकांक्षीसे निष्काम कर्मयोगी श्रेष्ठ हैं। अक्रिय सन्यासीका ब्रह्मज्ञान और योगीकी अष्टसिद्धियाँ उनके लिए सर्वदा ही सहज हैं।

भगवत्भक्त ही वास्तविक कर्मयोगी हैं। कर्मयोगी सभी प्रकारसे लाभवान होते हैं। इसीलिए वे जय, लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा आदि कुछ भी नहीं चाहते। जिन्होंने परतत्त्व वस्तुको प्राप्तकर अन्वय और व्यतिरेक रूपसे सभी प्रकारकी आकांक्षाओं, सभी प्रकारके ज्ञान, एवं सभी सिद्धियोंको सम्पूर्ण रूपसे प्राप्त कर लिया है, उन्हें इतर वस्तुओंकी आवश्यकता ही क्या है?

जो अक्रिय योगी पातञ्जलिके योग शास्त्रके अनुसार ध्यान-धारणा-प्राणायामादिके द्वारा अन्तमें समाधि लाभ करनेकी चेष्टा करते हैं, वे भी इस प्रकारसे ध्यान धारणादिका अनुष्ठान कर उस परमात्माका दर्शन करनेके लिए सब दुःखोंको सहते हुए अविचलित रहते हैं। अर्थात् वे एक ऐसी वस्तुको प्राप्त कर लेते हैं या प्राप्त होनेकी चेष्टा करते हैं, जिसके समान संसारमें और कोई भी वस्तु नहीं है। व्यतिरेकरूपसे इस प्रकारका लाभ पानेके लिए संसार का कोई दुःख, चाहे मृत्यु ही क्यों न हो, उसे तुच्छ ही प्रतीत होती है। ऐसे योगियोंके सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं:—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥
(गीता ६।२२)

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर इस श्लोकके तात्पर्यमें इस प्रकार कहते हैं:—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः", "योगसंज्ञितं विद्यात्" इत्यादि। विषयेन्द्रियोंसे सम्पर्क रहित होने पर समाधि-अवस्थामें बुद्धिग्राह्य आत्यन्तिक सुख मिलता है। उस विशुद्ध आत्मारामी योगीका चित्त तत्त्ववस्तुसे किसी भी प्रकारसे विचलित नहीं होता। अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, सिद्धि, ईशिता, वशिता, आदि अष्टसिद्धियाँ योगावस्थाके आवान्तर फल मात्र हैं। समाधि-अवस्थामें ये सभी सिद्धियाँ अत्यन्त तुच्छ जान पड़ती हैं। अष्टसिद्धियों में दो एक सिद्धियोंको पाकर ही कुछ योगी यह अभिमान करने लगते हैं कि हमें सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी हैं। फलस्वरूप वे पतित हो पड़ते हैं। उसके द्वारा चरमसिद्धि-स्वरूप समाधि नहीं पायी जा सकती। परन्तु यथार्थ कर्मयोगी होनेके कारण भक्तों का पतन नहीं होता। क्योंकि कृष्ण प्रीतिके लिए कर्म करते-करते उनका चित्तनिरोध हो जाता है एवं वे सहज ही योगका परमसिद्धिरूप समाधिअवस्थाको प्राप्त करते हैं। कृष्णसेवाके लिए उनकी योगसिद्धियाँ नव-नवायमान होकर क्रमशः बढ़ती जाती हैं। उस भगवत्सेवामें कैसा अप्राकृत सुख है, उसे प्राकृत 'वणिकवृत्ति' के द्वारा समझा नहीं जा सकता।

कर्मयोगीकी बात तो दूर रहे, साधारण योगी भी योगसिद्धिमें अग्रसर होकर समाधि-अवस्था तक पहुँच न पाने पर भी जहाँ तक वह अग्रसर हो जाता है, वहाँ तक वह व्यर्थ नहीं जाता। शरीर के नष्ट होने के साथ ही सभी प्राकृत विद्याओंका अनुशीलन या सिद्धिके लिए किया गया सब परिश्रम नष्ट हो जाता

है। परन्तु शुद्ध कर्मयोगीके भक्त्युन्मुखी कर्मादि शरीर और मनको अतिक्रम कर आत्मा और परमात्माके लिए साधित होनेके कारण आत्माकी सम्पत्ति है और शरीरका नाश होने पर भी जिस प्रकार आत्माका नाश नहीं होता, उसी प्रकार वे भक्ति कर्म समूह भी विनाश को प्राप्त नहीं होते। श्रीमद्‌भगवद्‌गीतामें भी कहा गया है कि कर्मयोगी जिन आत्मकल्याणकारी कार्योंका अनुष्ठान करते हैं, वे लौकिक और पारलौकिक दोनों ही अवस्थाके सम्पद् हो जाते हैं। इस सम्पद्‌का कभी भी विनाश नहीं होता। गीतामें भगवान कहते हैं—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥
(गीता ६।४०)

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इस श्लोकका अर्थ इस प्रकार किया है:—श्रीभगवानने कहा—"अर्जुन! योगानुष्ठान कर्त्ताका न तो इस लोकमें अर्थात् प्राकृत जगतमें और न परलोकमें ही अर्थात् अप्राकृत जगत् में ही विनाश होता है। कल्याणकारी कर्म करनेवाले व्यक्तिकी कभी भी दुर्गति नहीं होती। सच बात तो यह है कि मनुष्योंकी दो श्रेणियाँ हैं:—[१] अवैध और [२] वैध। जो लोग केवल इन्द्रिय सुखोंके लिए ही साधन करते हैं और किसी विधिके अन्तर्गत नहीं होते, वे पशुओंकी तरह विधिशून्य हैं। चाहे सभ्य हो या असभ्य, मूर्ख हो अथवा पण्डित, दुर्बल हो या बलवान, अवैध व्यक्तिका आचार-विचार सर्वदा ही पशुतुल्य होता है। उनके कर्मोंके द्वारा किसी भी तरह से कल्याणकी सम्भावना नहीं है। वैध मनुष्योंको (१) कर्मी, (२) ज्ञानी, और (३) भक्त—इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है। कर्मी दो प्रकारके हैं:—(१) सकामकर्मी और (२) निष्काम कर्मी। सकामकर्मी अत्यन्त क्षुद्र सुखान्वेषी होते हैं अथवा अनित्य सुखकी अभिलाषा रखते हैं। वे स्वर्गादि की प्राप्ति करते हैं, और सांसारिक सुखोंको भी प्राप्त करते हैं। किन्तु वे सभी सुख अनित्य होते हैं। ऐसे जीवोंका वास्तविक कल्याण नहीं होता। जीवके जड़ शरीर और मनसे मुक्त होने पर जो सुख (नित्यानन्द) लाभ होता है, वही यथार्थ कल्याण है। जहाँ ऐसा नित्यानन्द नहीं पाया जाता, वह 'फल्गुसुख' है। यदि कर्मकाण्डमें ऐसे नित्यानन्दको पानेकी चेष्टा देखी जाती है, तभी कर्मको कर्मयोग कह सकते हैं। उस कर्मयोगके द्वारा क्रमशः चित्त-शुद्धि, ज्ञान-लाभ, ध्यानयोग, और अन्तमें भक्ति-योगकी प्राप्ति होती है। सकाम-कर्ममें आत्मसुखको परित्यागपूर्वक जो कष्ट स्वीकार करना पड़ता है, उससे कर्मीको भी 'तपस्वी' कह सकते हैं। तपस्या जितनी भी की जाय, उसका मूल उद्देश्य केवल इन्द्रियसुख ही है। असुरगण तपस्याके द्वारा फल प्राप्तकर इन्द्रिय-तर्पण ही किया करते हैं। इन्द्रिय-सुखका त्याग करने पर सहज ही में जीवका कल्याणोद्देशक कर्मयोग हो पड़ता है। वे कर्मयोगस्थित ध्यानयोगी या ज्ञानयोगी—अधिकतर कल्याणकारी हैं।"

इस प्रकार कल्याणकारी कर्मयोगी इस जन्ममें जितना भी अग्रसर होते हैं, अगले जन्ममें उस अवस्थासे और भी उन्नत अवस्थामें पहुँचनेका सुयोग पाते हैं। गीता में कहते हैं:—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥
(गीता ६।४३)

"अर्जुन ! वहाँ वह उस पूर्वके देहमें अभ्यास किये हुए बुद्धि संयोगको सहज ही पा जाता है और उससे फिर स्वाभाविक रुचिके अनुसार योगकी पूर्णसिद्धिके लिए चेष्टा करता है ।"

जो व्यक्ति योगभ्रष्ट हो जाते हैं, वे ब्राह्मणोंके घरमें अथवा धनी व्यक्तिके घरमें जन्म लेते हैं ।

"शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।"
(गीता ६।४१)

साधरणतः योगभ्रष्ट कहनेसे सभी प्रकारके योगिय के सम्बन्धमें समझना चाहिए । जैसे—ध्यानयोगी, ज्ञानयोगी, हठयोगी आदि । किन्तु इन सभी योगियोंमें कर्मयोगी ही भगवत् कर्मोंमें अपनेको नियोजित करते हैं । अतएव वे ही भक्तियोगके अधिकारी हैं । उत्तमाधिकारमें उनके कर्म, ज्ञान, और ध्यान आदि सब कुछ 'ईशावास्य' की भूमिकामें पहुँच जाता है । अतएव ऐसे उत्तमाधिकारी भक्तियोगके अधिकारी हैं । वे ही सर्वोत्तम योगी या महात्मा हैं । ऐसे अनन्यचित्तवाले योगी ही भगवद्भक्त हैं । अतएव वे सभी योगियोंके गुरु हैं । गीतामें कहते हैं:—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥
(गीता ६।४७)

इस श्लोकमें यही बतलाया गया है कि भगवद्-भक्ति ही सभी प्रकारके कर्म, ज्ञान, योग आदिका एकमात्र उद्देश्य है । श्रीभक्तिविनोद ठाकुर इस श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं:—

"कितने प्रकारके योगी हैं, उन सभी योगियोंसे भक्तियोगके अनुष्ठान करनेवाले योगी ही श्रेष्ठ हैं । जो श्रद्धालु होकर मुझे भजते हैं, वे योगियोंमें श्रेष्ठ हैं । वैध मानवोंमें सकामकर्मीको योगी नहीं कहा जा सकता । निष्कामकर्मी, ज्ञानी, अष्टांगयोगी और भक्तियोगी—ये सभी 'योगी' हैं । वस्तुतः योग एक ही है । सोपानमय मार्ग विशेषको ही योग कहते हैं । उस मार्गका आश्रय कर जीव ब्रह्मपथारूढ़ होते हैं । निष्काम कर्मयोग इस सोपानका प्रथम क्रम है । उसमें ज्ञान और वैराग्य संयुक्त होकर दूसरा क्रम 'ज्ञानयोग' होता है । उसमें पुनः ईश्वर चिन्तारूप ध्यान का योग करनेसे अष्टांग योगरूप तीसरा क्रम होता है । उसमें भगवत प्रीतिके संयुक्त करनेसे 'भक्तियोग' रूप चौथा क्रम होता है । इन सभी क्रमोंके संयुक्त होकर जो बृहत् सोपान है, उसीका नाम योग है । उस योगको स्पष्ट रूपसे समझानेके लिए उक्त सभी खण्ड-योगोंका वर्णन करना होता है । नित्य कल्याण ही जिनका उद्देश्य है, वे योगका ही अवलम्बन करते हैं । परन्तु प्रत्येक क्रममें उन्नति लाभ कर उसमें पहले निष्ठा प्राप्त कर अन्तमें उस क्रमका परित्याग करके उसके अगलेवाले क्रममें पूर्व-निष्ठाका त्याग करना होता है । जो किसी एक क्रममें ही आबद्ध रह जाते हैं, उनका योग सम्पूर्ण नहीं होता । अतएव जो जिस क्रममें अवस्थित हैं, उसी क्रमके नामानुसार एक खण्डयोगमें ही उनकी प्रतिष्ठा है । इसलिए कोई कर्मयोगी, कोई ज्ञानयोगी, कोई अष्टांगयोगी और कोई भक्तियोगीके नामसे परिचित हैं । इसलिए हे अर्जुन !

केवल मेरी भक्ति ही जिनका एकमात्र उद्देश्य है, वे दूसरे तीनों प्रकारके योगियोंसे श्रेष्ठ हैं। तुम वैसे योगी या भक्तियोगी बनो।"

जड़-क्रमपथ और चित्क्रमपथ एक नहीं हैं। जड़ क्रममें एक क्रमके पश्चात् दूसरे क्रममें अग्रसर होना पड़ता है एवं उस क्रमपथको उल्लंघन करनेकी विधि नहीं है। जैसे कोई यदि एम० ए० पास करना चाहे, तो उसे क्रमानुसार निम्न श्रेणीसे आरम्भ कर उच्चश्रेणीमें पहुँचना होता है। यदि कोई चाहे कि एक ही बारमें एम० ए० पास करें, तो वह सम्भव नहीं है। किन्तु चित् राज्यमें उस प्रकारका क्रम पथ या विधि मार्गके वर्तमान रहने पर भी भगवानकी कृपासे एक ही बारमें एम० ए० पास किया जा सकता है। भगवानके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर ऐसी कृपा प्राप्त होती है। भगवत् भक्तोंके सङ्गके प्रभावसे ऐसे सम्बन्धका उदय होता है। प्रत्येक जीवके साथ ही भगवानका एक निगूढ़ नित्य सम्बन्ध है। माया सङ्गके प्रभावसे वह सम्बन्ध ढका है, उसे हम भूल गये हैं। हम [illegible] धनीके पुत्र होकर भी दुर्भाग्यवश भिखारी होकर द्वार-द्वार पर धक्का खा रहे हैं। यद्यपि इस बातको हम अच्छी तरह समझ सकते हैं, तथापि हम यह नहीं जानते कि वह पैत्रिक सम्पत्ति कहाँ मिलेगी और कैसे सुखी होंगे। इसलिए हमारी चेष्टा व्यर्थ जाती हैं और हमारी दरिद्रताकी समस्या हल नहीं होती। इस प्रकारके दारिद्र्य अवस्थामें कई लोगोंसे हमारी भेंट होती है। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि वे हमारी सहायता करेंगे। परन्तु बादमें हम यही देखते हैं कि वे भी हमारी ही तरह दरिद्र हैं। उनमेंसे कोई-कोई धनी जान पड़ते हैं। परन्तु वे हमें जो मार्ग दिखलाते हैं, उससे हमारी दरिद्रता दूर नहीं होती। वे हमें कर्म ज्ञान, योग, ध्यान आदि कई पथ दिखलाते हैं, जिनसे हमारी दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। इसलिए सर्वावतारी स्वयं भगवान शचीनन्दन श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी ने श्रीरूप गोस्वामीजीको लक्ष्यकर सभी जगद्वासियों को यह उपदेश दिया है:—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।
गुरु कृष्ण प्रसादे पाय भक्तिलता बीज॥
(चै० च० म० १९।१५१)

भगवान श्रीकृष्णकी कृपासे भक्तिलता बीजको श्रीमद्भगवद्गीतामें ही पायी जा सकती है। यदि हम इस बीज को ग्रहण कर सके, तभी हम गीता शास्त्रका सार ग्रहण कर सकते हैं। अन्यथा जन्म जन्मान्तर तक गीताका अध्ययन करके एवं उसकी व्याख्या करके भी हमारा कोई लाभ नहीं होगा।

भगवान श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं अपने तत्त्वका वर्णन किया है। कितने ही साधारण व्यक्तियोंने अपना जीवन चरित्र स्वयं लिखकर (अंग्रेजीमें जिसे (Autobiography) कहते हैं) सामयिक रूपमें सम्मान प्राप्त किया है। किन्तु स्वयं भगवान द्वारा अपने सम्बन्धमें कहे हुए बातों पर दुर्भाग्य वशतः विश्वास कर नहीं पाते। अधिकन्तु अपने स्व-कपोल-कल्पित मतका स्थापन करनेके लिए गीताका मुख्य अर्थ छोड़कर गौणार्थ लेकर विचार करते हैं। ऐसे विकृत गौणार्थ लेकर अन्त तक अर्थका सामञ्जस्य

कर नहीं पाते एवं शब्दोंका ठीक उल्टा अर्थ ही कर बैठते हैं। इस प्रकार विद्वत् समाजमें हास्यास्पद हो पड़ते हैं। श्रीमद्‌भगवद्‌गीतामें कहा है कि श्रीकृष्ण ही परतत्त्व हैं एवं उनकी सेवा करना ही हमारा नित्यकर्म और धर्म है। इस तथ्यको समझनेके लिए श्रीमद्‌भगवद्‌गीताकी अवतारणाकी गई है। इस तथ्यको समझनेसे ही भक्ति-राज्यमें प्रथम सोपानरूप कनिष्ठाधिकार प्राप्त होता है। यह कनिष्ठाधिकार ही 'श्रद्धा' शब्दका सूचक है। इसलिए कहा गया है:—

> "श्रद्धा शब्दे विश्वास 'कहे' सुदृढ़ निश्चय।
> कृष्णे भक्ति कैले सर्वकर्म कृत हय॥

अर्थात् भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति या सेवा करनेसे सभी कर्मोंका करना हो जाता है, इस दृढ़ विश्वास एवं सुदृढ़ निश्चयको ही श्रद्धा कहते हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

वृन्दावनकी पृष्ठभूमि

प्राकृत दृष्टिसे वृन्दावन भी पृथ्वीके दूसरे स्थानोंकी भाँति पार्थिव और प्रपंचान्तर्गत दिखलाई पड़ता है, परन्तु समस्त भारतीय शास्त्रग्रन्थोंमें इसे वर्णनातीत, नित्य अलौकिकरूप एवं श्रीभगवानकी नित्य विहार-स्थली घोषित किया गया है। इतना ही नहीं, वृन्दावनको भगवानके वैकुण्ठ आदि समस्त धामोंमें सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि बतलाया गया है। अप्राकृत वृन्दावनमें प्राकृत तत्त्वका कोई भी व्यापार नहीं है। इसलिए प्राकृत नेत्र उसका दर्शन नहीं कर पाते। फिर भी भगवानकी अघटन-घटन-पटीयसी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे यह अप्राकृत धाम प्रपंचमें आविर्भूत होकर प्राकृत नेत्रोंके भी साक्षात्कारका विषय हो रहा है। इस प्रकार अप्राकृत सम्पूर्ण सौन्दर्यसे मण्डित महामहीम वृन्दावनकी तो बात अलग रहे, भौतिक दृष्टिसे भी उसका सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्य सर्वजन-मनोहारी एवं परम चमत्कारपूर्ण है।

श्रीवृन्दावन नित्य, अनादि, चिन्मय और अप्राकृतरूप है। अर्थात् किसी भी कालमें इसका ध्वंस नहीं है। व्रजके परम रसिकोपासक श्रीरूप-सनातन आदि वैष्णवाचार्योंने श्रीभगवानकी अनन्त शक्तिमें परा, अपरा और जीवशक्ति अर्थात् अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा और तटस्था—इन तीन शक्तियोंको मुख्य माना है। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

<u>(१) पराशक्ति या अन्तरङ्गा शक्ति</u>—यह शक्ति भगवानकी स्वरूप-शक्ति है। इसकी तीन मुख्य वृत्तियाँ हैं—सम्वित, संधिनी और ह्लादिनी। सम्वित् वृत्तिके द्वारा सम्पूर्ण भावों (ज्ञानादि) का उदय होता है। संधिनी वृत्ति द्वारा सम्पूर्ण सत्ताएँ अर्थात् वैकुण्ठादि भगवद्धाम प्रकटित हैं और ह्लादिनीवृत्ति द्वारा भगवान अपनी नाना-प्रकारकी लीलाओं द्वारा स्वयं आनन्दित होते हैं तथा जीव-समूहको भी आनन्दित करते हैं—

"कृष्णके आह्लादे ताते नाम आह्लादिनी "।

[श्रीकृष्णदास कविराज गो० कृत चैतन्यचरितामृत]

चिद् जगत्की समष्टिको ही "त्रिपाद-विभूति" एवं "व्यापक" भी कहा गया है।

(२) बहिरङ्गा या अपरा शक्ति—यह शक्ति जड़ रूपा है। श्रीभगवान अपनी इसी शक्तिके द्वारा अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करते हैं। इसी शक्ति द्वारा प्रकटित अगणित ब्रह्माण्ड आदि जड़-जगतको एक-पाद-विभूति कहा गया है—

"एकांशेन स्थितो जगत्" (गीता १०।४२)

अपरा शक्ति द्वारा रचित विभिन्न प्रकारके मायिक प्रपंचोंमें फँसा हुआ नाना-पकारके क्लेशोंको भोगनेवाला जीव सांसारिक या बद्धजीव कहलाता है।

(३) तटस्था या जीवशक्ति—भगवानकी अन्तरङ्गा और बहिरङ्गा शक्तियोंके मध्य भगवानकी और भी एक शक्तिका परिचय मिलता है जिसे "तटस्था शक्ति" कहते हैं। इसे अणु-चित शक्ति या जीव शक्ति भी कहते हैं। इसी तटस्था-शक्तिसे ही अगणित अणुचित् जीव-समूह प्रकटित हैं। जीव, शक्तिमान तत्त्व भगवान्का साक्षात् अंश नहीं, बल्कि भगवान् की तटस्था या जीव शक्तिसे परिणत हुआ तत्त्व है; इसलिये जीवको भगवानका विभिन्नांश-तत्त्व कहा गया है। भगवानके अवतारसमूह शक्तिमान तत्त्व या अंश तत्त्व हैं, परन्तु जीवसमूह शक्तितत्त्व या विभिन्नांश-तत्त्व हैं। जीव दो प्रकारके हैं—बद्ध या सांसारिक और (२) मुक्त। जो जीव तटस्थ-स्वभावके कारण मायासे मुक्त हैं, उन्हें "मुक्त जीव" कहते हैं। जो जीव तटस्थ स्वभावके कारण मायाके बन्धनमें पड़कर अपना शुद्ध स्वरूप विस्मृत हैं, वे बद्ध या सांसारिक जीव हैं। बद्ध जीवका शुद्ध चेतन-स्वरूप माया-निर्मित स्थूल (पंचभौतिक) और सूक्ष्म (मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त)—इन दो शरीरोंसे ढका हुआ रहता है तथा चौरासी लाख प्रकारकी योनियोंमें नानाप्रकारके क्लेशोंको भोगता हुआ भटकता फिरता है। भगवत् कृपासे सत्संगमें तत्त्वज्ञानकी उपलब्धि होने पर वह पुनः अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर श्रीभगवानकी नित्य सेवामें संलग्न हो जाता है। (विस्तार के लिये श्रीगौड़ीय-वैष्णव-सिद्धान्त देखिये।)

श्रीभगवान, उनके परिकर, उनके धाम तथा उन धामोंकी प्रत्येक वस्तु चिन्मय और सीमारहित अर्थात् व्यापक है। इसीलिये शास्त्रोंमें उन्हें "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि" कहकर भगवानकी "त्रिपाद-विभूति" कहा गया है। यद्यपि मायिक (चर्म) नेत्रोंसे वृन्दावन भौतिक जगतके ही अन्तर्गत दिखलायी पड़ता है, तथापि वह परम धाम "त्रिपाद-विभूति" ही है।

(क) आध्यात्मिक दृष्टिसे वृन्दावन—शास्त्रोंमें उल्लेख है कि श्रीभगवानकी महारास लीला वृन्दावन के एक अंश में स्थित यमुना-पुलिनके एक भागमें सम्पन्न हुई थी; जिसमें शत-कोटि गोपियोंके साथ एक ही श्रीकृष्ण शत-कोटि कृष्णरूपमें अर्थात् एक ही समयमें एक-एक गोपीके साथ एक-एक कृष्ण प्रकट होते हैं—

अभूदाकुलितो रासः प्रमदाशतकोटिभिः।
पुलिने यमुने तस्मिन्नित्येषागमिकी प्रथा॥

(उज्ज्वलनीलमणि रा० प्र० श्लोक २)

यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि एक स्वल्प-परिमित स्थलमें इतनी संख्यक गोपियोंके साथ एक ही समयमें अलग-अलग श्रीकृष्णका नृत्य-विहारादि करनेका अवकाश किस प्रकार संभव है ? इसका प्रधान कारण व्रज (वृन्दावन) की चिन्मयता है। क्योंकि प्रकृतिसे अतीत चिन्मय तत्त्व सीमारहित होनेके कारण वृहत्से भी वृहत् और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है। लीलाकी आवश्यकतानुसार वह कहीं पर विस्तृत हो जाता है, तो कहीं संकुचित भी।

"स्फारः संकुचितश्चस्यात कृष्णलीलानुसारतः।"
(रूप गो० कृत लघु भागवतामृत श्लोक ५०८)

श्रीभगवान और उनका धाम वृन्दावन—ये दोनों सर्वदा अभिन्न हैं। इसलिये श्रीभगवान जिस प्रकार "अणोरऽपि अणियान् महतोऽपि महियान्"-अणुसे भी सूक्ष्म और वृहद्से भी वृहद् हैं, उसी प्रकार उनका धाम वृन्दावन भी "अणोरऽपि अणियान् महतोऽपि महियान्" है।

नन्दगाँवसे वृन्दावन बीस कोसकी दूरी पर है; परन्तु यहाँसे श्रीकृष्ण नित्य दो बार वृन्दावन आते-जाते थे। यहाँ व्रजभूमि लीलापुष्टिके लिए संकुचितावस्थाको धारण कर लेती है।

श्रीभगवानके श्रीविग्रहमें भी इस व्यापकताके दर्शन होते हैं। वात्सल्यमग्ना मातु यशोदाजीने अपने लालको व्रजकी समस्त रस्सियोंको एकत्रित करके बाँधनेकी चेष्टा की; परन्तु यशोदानन्दनकी कमर हर दशामें दो अँगुल अवशिष्ट ही रह जाती है और बँधनेमें नहीं आती है। इसी व्यापकताकी दृष्टि से भी श्रीभगवानके रोम-प्रति-रोममें अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी स्थिति बतलायी गयी है। साथ ही साथ उसी समय माँ यशोदाद्वारा पहनायी गयी कौंधनीका जोड़ भी दिखलायी देने लगता है। अतः स्पष्ट है कि श्रीभगवानका श्रीविग्रह अपरिच्छिन्न होनेपर भी कहीं-कहीं परिच्छिन्नवत् प्रतीत होता है। भगवानमें परस्पर विरोधी अगणित भावोंकी स्थिति है। यह सब उनकी अचिन्त्य शक्तिके कारण संभव है। इसी प्रकार वृन्दावनकी भूमि भी भगवानसे अभिन्न तत्त्व होनेके कारण अपने स्वरूपमें स्थित होकर भी बहिर्दृष्टिसे भगवद्विमुख जीवोंसे अपने स्वरूपको गोपन कर लेती है।

वस्तुतः इस सम्पूर्ण व्रजभूमिमें ध्वंशात्मक भाव है ही नहीं। इस भूमिमें प्रलयादि व्यापारोंका प्रवेश ही नहीं है। यहाँ प्राकृत सूर्य-चन्द्र-तारादिके अस्तित्वका भी अवकाश नहीं है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः॥
(कठोपनिषद् २।२।१५)

ब्रह्म संहितामें तो यहाँ तक कहा गया है कि इस परम पावन व्रजभूमिमें महाकालादिका भी प्रवेश नहीं होता है। जब महाकालादिका ही प्रवेश नहीं होता, तो फिर यहाँ प्रलयादि व्यापारोंके प्रवेशका प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। किसी वस्तुका ध्वंशकाल समवाहित होकर होता है, अतः आध्यात्मिक दृष्टिसे व्रजभूमिका ध्वंश या परिवर्तन नहीं होता है। इस भगवद्धाममें जो कुछ भी है, वह सब अप्राकृत ही है अर्थात् प्राकृत माया-वैभवसे भिन्न "त्रिपाद विभूति" के अन्तर्गत यह व्रज-वृन्दावन है।

श्रीवृन्दावनके स्वरूपदर्शन प्रकट और अप्रकट इन दोनों रूपोंमें होते हैं, यह व्रजभूमि अपने स्थान पर नित्य रूपसे स्थित है; किन्तु जब अपनी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा बहिर्चक्षुओं (चर्म चक्षुओं) से स्वयं दृष्टिगोचर होती है तो उसे हम "प्रकट" और जब बहिर्चक्षुओंसे अपने स्वरूपको छिपा लेती है तो उसे हम "अप्रकट" कहते हैं । जिस प्रकार सूर्य अपने लोकमें स्थित होनेपर भी मध्याह्नके समय हमें अपने सिरके ऊपर दृष्टिगोचर होता है (वस्तुतः वह हमारे सिरके ऊपर नहीं है), ठीक उसी प्रकार श्रीभगवान् की यह लीलास्थली वृन्दावन भी "प्रकट" कालमें इस ब्रह्माण्डमें आविर्भूत होती है यद्यपि यह ब्रह्माण्डसे सर्वथा पृथक ही है ।

श्रीभगवान् अपने धामको प्रकट कर उसमें नाना प्रकारके लीला-विहारादि किया करते हैं । परम भक्त-जन ही अपनी प्रेम दृष्टिसे भगवद्धाम—वृन्दावनके यथार्थ स्वरूपका दर्शन करते हैं अर्थात् उन्हें यहाँकी भूमि चिन्तामणि, यहाँके वृक्ष कल्पवृक्ष और यहाँ का जल अमृतमय दीखता है—

"कल्पतरवो द्रुमा भूमिश्चिन्तामणि गणमयी तायममृतम्"
या (ब्रह्म संहिता)
"चिन्तामणि-भूमि कल्पवृक्षमय वन ।
चर्मचक्षे देखे तारे प्रपंचेरसम ।"
(चै. च. मूल मा. सं. ५।२०)

किन्तु प्रपंचजन अपनी मायिक दृष्टिसे इसका यथार्थ स्वरूपानुभव न कर भौतिक रूप या मिट्टी, पत्थर, कीचड़ आदिका ही अनुभव करते हैं । जिस प्रकार श्वेत शंखको पीत-रोगी पीले वर्णका ही देखता है, या पित्त-प्रसित जिह्वा मिश्रीका मिठास अनुभव नहीं कर सकती है, ठीक उसी प्रकार मायिक नेत्र भी इस महामहिम वृन्दावनके यथार्थ अप्राकृत स्वरूपका अनुभव नहीं कर पाते हैं ।

बादशाह अकबर (१५५६-१६०५ ई०) अपने शासन कालमें एक बार श्रीपाद सनातन गोस्वामीजी के दर्शनार्थ वृन्दावन आया और दर्शन प्राप्त कर उसने गोस्वामीजीसे कुछ सेवा कार्य प्रदान करनेकी प्रार्थनाकी । भारत सम्राटके अत्यन्त आग्रहको देखकर पूज्यचरण गोस्वामीजीने उत्तर दिया—"यदि तुम इतना ही आग्रह करते हो, तो जमुना घाटकी इस टूटी हुई सीढ़ीके अंशको ठीक करवा दो ।" भारत सम्राट अकबर इसे तुच्छ सेवा जानकर मनमें सोचने लगा कि घाटकी सीढ़ीके इस छोटेसे अंशकी मरम्मत करवा देना मुझ जैसे वैभवशाली सम्राटके लिए कोई श्रेयस्कर बात नहीं है, इस कार्य को तो एक साधारण व्यक्ति भी करवा सकता है । किन्तु जब अकबरने घाट पर जाकर देखा कि समस्त घाट चन्द्रकान्तादि अमित ज्योति पुँज मणि-माणीक्योंसे देदीप्यमान हो रहा है । चकाचौंध देखकर अकबरके आश्चर्यका ठिकाना न रहा । बहुत परिश्रम करने पर, उसने अपने नेत्रोंको खोलकर देखा तो घाटकी सीढ़ीका एक अत्यन्त सूक्ष्म अंश खण्डित है । निराश होकर भारत-नरेश अकबर गोस्वामीजीके चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना करने लगा कि मेरे जैसे यदि सहस्रों बादशाह भी एक साथ मिलकर इस खण्डित अंशकी मरम्मत करवाना चाहें तो नहीं कर सकते, मेरी तो हैसियत ही क्या ? (देखिये श्रीलालदास कृत बङ्गला भक्तमाल, माला २० नं० ६७)

कहनेका तात्पर्य यह है कि दिव्य चक्षुओंके द्वारा ही दिव्य एवं नित्य वृन्दावनके दर्शन हो सकते हैं न कि इन चर्म या भौतिक चक्षुओं से:—

"·····चर्म चक्षे देखे तांर प्रपंचे सम,
प्रेमनेत्रे देखे तांर स्वरूप प्रकाश" ॥
(चै. च. आदि ५।२०-२१)

(क्रमशः)

—केदारदत्त तत्राड़ी एम., ए. सा० रत्न, साहित्यालंकार

प्रचार-प्रसंग

सुन्दरवन और शिलिगुड़िमें श्रील आचार्यदेव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति एवं आचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस स्वामी १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने एक सप्ताह तक बङ्गालके सुन्दरवन-अञ्चलके मठपीठ-विनोदपुर, दमकल, काशीनगर आदि स्थानोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाओंके सम्बन्धमें भाषण दिया है। साथ ही छायाचित्रके माध्यमसे भी धर्मके निगूढ़ तत्त्वोंको बतलाकर जनसाधारणको आनन्दित किया। उनके साथ १६ ब्रह्मचारी एवं संन्यासी थे।

सुदूर उत्तरबङ्गस्थ शिलिगुड़ि निवासी भक्तोंके सादर आह्वान पर वे वहाँसे गत २१ अप्रैलको शिलिगुड़ि पधारे। वहाँ भक्तप्रवर श्रीयुत अमूल्यभूषण साहा (श्रीयुत अचिन्त्यगौर दासाधिकारी) के निवासस्थान पर ठहरनेकी व्यवस्था हुई, श्रील आचार्यदेवके शिलिगुड़ि स्टेशन पर पधारते ही श्री अमूल्य बाबू, श्रीभोलानाथ बाबू आदि शहरके सज्जन एवं मान्य महोदयोंने श्रील आचार्यदेवको पुष्पमालाओंसे विभूषित किया। भक्तवृन्द संकीर्तन करते-करते श्रीयुत अमूल्य साहा महोदयके घर पर पधारे। उस दिन रातको एक बड़ी सभाका आयोजन किया गया, जिसमें परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेवने "हरिकथा कीर्तनका अधिकारी" विषयपर हृदयग्राही और पाण्डित्यपूर्ण भाषण दिया। तत्पश्चात् समितिके विशिष्ट प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे "श्रीकृष्णलीला" का प्रदर्शन करते हुए भाषण दिया।

दूसरे दिनसे स्थानीय कालेजके अध्यक्ष श्रीयुत दुर्गाचरण चट्टोपाध्याय एम. ए., पि. आर. एस., श्रीयुत इशानसस्कलार महोदय एवं उक्त कालेजके डिमानस्ट्रेटर श्रील प्रभुपादके आश्रित श्रीपाद हरिपद (मण्डल) दासाधिकारी महोदय एवं अन्यान्य सज्जनोंके विशेष आग्रहसे स्थानीय कॉलेज हॉलमें २२ अप्रेलसे २४ अप्रेल तक तीनदिनव्यापी वक्तृताका आयोजन हुआ। पहले दिन माननीय श्रीयुत दुर्गाचरण चट्टोपाध्यायने सभापतिका आसन ग्रहण किया। श्रील आचार्यदेवने उस सभामें "मनुष्य जीवनका कर्तव्य एवं वर्तमान समस्याका समाधान" प्रसङ्गमें ओजस्विनी भाषामें भाषण दिया। बादमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे "कृष्णलीला" प्रदर्शनपूर्वक भाषण दिया। दूसरे दिन स्थानीय सरकारी चिकित्सक माननीय श्रीयुत शेखरेन्दु कुमार चट्टोपाध्याय महाशयने सभापतिका आसन ग्रहण किया। श्रील आचार्यदेवने उस दिनकी सभामें "धर्मजगतमें वैष्णव-दर्शनका स्थान" एवं "चिज्जड़ समन्वयवादी का तत्त्व विरोध" इन दोनों विषयोंपर सुसिद्धान्तपूर्ण दार्शनिक भाषण प्रदान किया। पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजने भाषण दिया एवं अन्तमें छायाचित्रके माध्यमसे "कृष्णलीला" का प्रदर्शन किया। अन्तिम तीसरे दिन स्थानीय कॉलेजके अंग्रेजीके प्रधान अध्यापकने सभापतित्व किया। उस दिन श्रील आचार्यदेवने

"सनातन-धर्म या भागवत धर्म"—इस विषय पर सुदृढ़ शास्त्रयुक्तिपूर्ण सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में श्रीयुत चिद्घनानन्द ब्रह्मचारीने छायाचित्रके माध्यमसे "श्रीमन् महाप्रभुकी लीला" का प्रदर्शन करते हुए भाषण दिया।

उपरोक्त धर्म सभाओंमें श्रील आचार्यदेवके सुसिद्धान्तपूर्ण दार्शनिक वक्तृताओंको सुननेके लिए प्रतिदिन गण्यमान्य अध्यापकवर्ग, शिक्षित व्यक्तियों एवं हजारोंकी संख्यामें स्थानीय जनताका समागम होता था। उन लोगोंने यह भलीभाँति अनुभव किया कि श्रीमन् महाप्रभुके द्वारा आचरित और प्रचारित शिक्षा ही सर्वोत्तम है। अधिक क्या, भाषणके समय उस सुबृहत् कॉलेज हॉलमें एवं बाहरके बरामदेमें तिल रखनेकी भी जगह नहीं रहती थी।

शिलिगुड़ि निवासी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रचार-वैशिष्ट्यसे इतने आकृष्ट और मुग्ध हुए कि उन्होंने स्थानीय सुभाषपल्लीमें स्थित नेताजी हाई स्कूलमें और भी कुछ दिन प्रचार करनेके उद्देश्यसे श्रील आचार्यदेवके निकट प्रार्थना की। उनकी प्रार्थनानुसार २५ अप्रैलको उक्त स्कूलमें आयोजित सभामें श्रील आचार्यदेवने "सनातन धर्म" के सम्बन्धमें भाषण दिया। उसके बाद श्रीयुत चिद्घनानन्द ब्रह्मचारीने छायाचित्रके माध्यमसे "श्रीमन महाप्रभुकी लीला"का प्रदर्शन कर भाषण दिया। २६ अप्रैलको त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजने "सर्वधर्म समन्वय"के सम्बन्धमें भाषण देकर समन्वयवादकी हेयता दिखलाकर वैष्णव धर्म ही सनातन-धर्म है एवं अन्यान्य सभी धर्म छल धर्म हैं, इस विषयकी विस्तारपूर्वक आलोचना की। अन्तमें श्रीयुत चिद्घनानन्द ब्रह्मचारी छायाचित्रके माध्यमसे "श्रीमन महाप्रभुकी लीला एवं उपदेश"के सम्बन्धमें भाषण किया। सभाके आदि और अन्तमें महाजन-पदावलियोंका कीर्तन हुआ।

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णुदैवत महाराज एवं त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज उक्त नेताजी स्कूलमें और शहरके विशिष्ट लोगोंके यहाँ भागवत-पाठपूर्वक हरिकथाका परिवेशन किया।

श्रील आचार्यदेवने शिलिगुड़ीमें जिनके यहाँ शुभविजय किया था, उन भक्तप्रवर श्रीयुत अमूल्यभूषण साहा महोदयने अक्षय तृतीयाके दिन सस्त्रीक श्रीहरिनाम-दीक्षा ग्रहण किया। साथ ही स्थानीय विशिष्ट व्यवसायी श्रीयुत अमूल्यचरण दत्त महोदयकी सहधर्मिणीने भी श्रील आचार्यदेवके निकट श्रीहरिनाम-दीक्षा ग्रहण किया तथा और भी कई व्यक्तियोंने श्रीआचार्यचरणके निकट श्रीहरिनाम ग्रहण किया।

मायाभाङ्गावासी भक्तोंके हरिकथा-श्रवण करनेमें प्रचुर आग्रहको देखकर श्रील आचार्यदेवके आदेशानुसार कुछ ब्रह्मचारी एवं संन्यासी स्थानीय श्रीगौड़ीय सेवाश्रममें ठहरकर शहरके विभिन्न स्थानोंमें १०-१२ दिनोंतक पाठ, कीर्त्तन एवं वक्तृता आदिके द्वारा सभीको आनन्द प्रदान किया।

शिलिगुड़िमें विराट् रूपसे श्रीमन् महाप्रभुकी शिक्षाओंका प्रचार कर श्रील आचार्यदेवने सपार्षद गत १८ मईको श्रीधाम नवद्वीपके श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें शुभ विजय किया है।

—निजस्व संवाददाता

साधु-संगमें

समग्र भारतके तीर्थोंके दर्शनका सुवर्ण सुयोग

[एक ही यात्रामें सप्त मोक्षदायिका पुरियों और तीनों धामोंकी परिक्रमा एवं प्रसिद्ध-प्रसिद्ध देव-मन्दिरोंके दर्शन तथा तीर्थ-स्नान आदिका विराट आयोजन]

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी-द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥
(स्कन्दपुराण)

गौर आमार जे-सब स्थाने करल भ्रमण रंगे।
से-सब स्थान हेरिब आमि प्रणयि-भकत-संगे॥

अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची (शिवकांची और विष्णुकांची), अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारका इन सात पुरियोंको श्रीवेद-व्यासने स्कन्दपुराणमें मोक्षदायिका पुरी कहा है। इसलिये मोक्षकी कामना रखनेवाले हिन्दू अनेक यत्न और अनेक अर्थ खर्च करके भी इन सातों तीर्थोंकी यात्रा और परिक्रमा आदि किया करते हैं। विशेषतः साधु संगमें तीर्थ-भ्रमणका सौभाग्य तो अल्प-संख्यक विरले पुण्यवान व्यक्तियोंको ही संभव है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति सर्व-साधारणको यह सुयोग दान करनेके लिये इस वर्ष आगामी १३ आश्विन, १० अक्टूबर १९६३, वृहस्पतिवारको श्रीनवद्वीप-धाम स्टेशनसे रिजर्व-स्लिपिंग-कार गाड़ी-से यात्रा करेगी। अतएव यात्रियोंको सूचित किया जाता है कि वे उक्त दिनके दोपहर १२ बजेसे संध्या ४ बजेके बीच नवद्वीपके श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें उपस्थित हों। समितिने उक्त सप्ततीर्थों तथा पुरी, रामेश्वर और द्वारका—तीनों धामोंके सहित समग्र-भारतके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ६४ तीर्थस्थानोंके दर्शनोंकी व्यवस्था की है। इन सब स्थानोंमेंसे अधिकांश ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंके स्पर्शसे महा-तीर्थ स्वरूप हैं। अतएव आत्ममङ्गलकामी व्यक्ति इस अपूर्व सुयोगको अवश्य ही ग्रहण करेंगे।

इस तीर्थयात्राका वैशिष्ट्य यह है कि यात्रीगण गाड़ीके भीतर ही प्रतिदिन श्रीविग्रहके अर्चन, पूजन, मङ्गलारात्रिक, मध्याह्न-भोग-आरति और संध्यारति आदिके दर्शन, श्रीहरिसंकीर्तन, श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंकी व्याख्या और निरन्तर साधु-मुखसे हरि-कथा और तीर्थ-महात्म्य आदि श्रवण तथा श्रीविग्रह के बालभोग और दोनों समय महाप्रसाद सेवा करनेका अपूर्व सुयोग प्राप्त करेंगे।

दर्शनीय स्थान—

(१) नवद्वीप, (२) रेमुना, (३) भुवनेश्वर, (४) साक्षीगोपाल, (५) पुरी, (६) सिंहाचलम् [जियड़ नृसिंह], (७) कव्वूर [राय रामानन्द और श्रीमन् महाप्रभुका मिलन क्षेत्र], (८) मङ्गल गिरि [पाना नृसिंह], (९) मद्रास, (१०) चिंगलपेट [पक्षी तीर्थ],

(११) चिदाम्बरम् [नटराज],(१२) मायाभरम् (१३) कुंभकोनम, (१४) पापनाशनम्, (१५) ताञ्जौर, (१६) (१७) धनुष्कोटी, (१८) मदूरा, (१९) कन्याकुमारी, (२०) श्रीरंगम्, (२१) विष्णुकांची, (२२) शिवकांची, (२३) तिरुपति, (२४) पण्ढारपुर, (२५) नासिक, (२६) बम्बई, (२७) नोच [महाराज बलिके निकट श्रीवामनदेव की भिक्षाका स्थान], (२८) प्रभास, (२९) सुदामापुरी, (३०) द्वारका, (३१) बेटद्वारका, डाकोर, (३३) अवन्तिका, (३४) नाथद्वार, (३५) अजमेर, (३६) पुष्कर, (३७) सावित्री, (३८) जयपुर, (३९) गलता पहाड़, (४०) आगरा, (४१) मथुरा, (४२) गोकुल, (४३) रावल, (४४) वृन्दाबन, (४५) राधाकुण्ड, (४६) गोवर्द्धन, (४७) वरसाना, (४८) नन्दग्राम, (४९) संकेत, (५०) दिल्ली (हस्तिनापुर), (५१) कुरुक्षेत्र, (५२) गङ्गकाली, (५३) हरिद्वार, (५४) कनखल, (५५) हृषिकेश, (५६) लक्ष्मण झूला, (५७) नैमिषारण्य, (५८) चक्रतीर्थ, (५९) अयोध्या, (६०) प्रयाग, (६१) अक्षयवट, (६२) काशी, (६३) गया, (६४) कीकट (विष्णु बुद्धका स्थान) और वहाँ से पुनः नवद्वीप लौटना।

नियमावली—

याता-यात रेलका किराया, रीजर्व गाड़ीके हल्टींग और हॉलेजका किराया, कुली किराया, बसका किराया, घरका किराया, बाल्य-भोग और सवेरे-शाम प्रसाद आदिके खर्चके लिये प्रत्येक यात्री को ५००) भिक्षा-स्वरूप देना होगा। उसमेंसे तारीख १७-९-६३ को अथवा उससे पहले २५०) समितिके अधिकारियोंके निकट अग्रिम जमा देकर नाम रजिस्ट्री करना होगा। बाकी रुपये यात्राके दिन ४ बजे शाम तक जमा करने होंगे।

विशेष निवेदन यह है कि पूर्व-पूर्व वर्षोंमें समितिके अधिकारियोंके निकट अग्रिम रुपये जमा किये बिना ही, यहाँ तक कि बिना पत्र-व्यवहार किये ही अनेक यात्री स्टेशन पर यात्रामें शामिल होनेके लिये अकस्मात् उपस्थित हो पड़ते थे। और इसलिये पूर्वनिर्दिष्ट यात्रियोंको बड़ी असुविधा होती थी। अतः इस वर्ष इस श्रेणीके यात्रियोंको न लेने पर कोई असन्तुष्ट न हो। ऐसी दशामें अग्रिम रुपया जमा करके १० आश्विन (२७-९-६३ ई०) के भीतर अवश्य ही अपना नाम तालिकाभुक्त करा लेंगे।

प्रत्येक यात्री अपने साथ साधारणतः शीत-वस्त्र, एक थाली, एक लोटा और एक कटोरी साथ लेंगे। यात्रीगण अति शीघ्र ही पत्रद्वारा अपना नाम और पता भेज कर रजिस्ट्री करा लें। इस परिक्रमामें लगभग २ महीने लगेंगे।

विशेष विवरण जाननेके लिये, अपना नाम रजिस्ट्री करानेके लिये तथा रुपया जमा करनेके लिये परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराजके निकट श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, पो०—चूँचुड़ा (हुगली) इस पते पर मिलें अथवा पत्र पत्रव्यवहार करें।

वि० निवेदक—

सभ्यवृन्द, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति